© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

उपनिषद् में वर्णित काम्य कर्म का त्याग व वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

देवी प्रसाद गुप्त,
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

वेद के अन्तिम भाग या उच्चतम दर्शन को वेदान्त या उपनिषद् कहा जाता है।[1] उपनिषद् शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्गों से युक्त 'षद्' धातु से क्विप् प्रत्यय होने से निष्पन्न है। इसमें 'षद्लृ विशरण गत्यावसादनेषु'[2] इस वचन के अनुसार 'षद्' धातु का अर्थ है विशरण–विशीर्ण करना, शिथिल करना, गति–प्राप्ति कराना और अवसादन उन्मूलन कराना, 'उप' का अर्थ है समीप, समीपस्थ, 'नि' का अर्थ है निर्बाध निस्संशय, नितराम् आदि, क्विप् (लुप्त) का अर्थ है– कर्ता, अतः उपनिषद् शब्द का अर्थ है– समीपस्थ को शिथिल करने वाली। मनुष्य के सर्वाधिक समीपस्थ होता है, उसकी आत्मा अतः समीपस्थ–आत्मस्थ है ब्रह्म का अनादि कालिक अज्ञान, उसे जो निर्बाध, निस्संशय नितान्त रूप में शिथिल करे–वह उपनिषद् है। इसी प्रकार 'उप–ब्रह्मणः सामीप्यं जीवं निस्संशयं सादयति गमयति– जो जीव को ब्रह्म के समीप निस्संशय पहुँचाये वह है, उपनिषद्, जीव को ब्रह्म के समीप पहुँचाने का अर्थ है ब्रह्म और जीव के बीच दूरी पैदा करने वाले ब्रह्म–जीव के ऐक्य के अज्ञान और तन्मूलक भ्रम को दूर कर जीव में ब्रह्मयैक्य का सम्पादन, इस कार्य को करने वाले का नाम उपनिषद है, अथवा उप–उपजातम् अनादिकालात् प्रवृत्तं आत्म–संसार–सम्बन्धं नित्ररां सादयति–अवसादयति या सा उपनिषद्–जो अनादिकाल से प्रवर्त्तमान आत्मसंसार सम्बन्ध का नितराम् अवसादन–पुनः प्रादुर्भाव विरोधी उन्मूलन करे, वह उपनिषद् है। इन सभी अर्थों के अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मविद्या का अर्थ है ब्रह्मद्वैत का द्वैतमुक्त ब्रह्म का साक्षात्कार, क्योंकि उसी से ब्रह्म के अज्ञान का शिथिलीकरण जीव का ब्रह्मीभाव तथा आत्मा के साथ संसार के अनादि सम्बन्ध का उन्मूलन होता है।

अतएव उपनिषद् द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार लोक–कल्याण निश्चित ही है, परन्तु मनुष्य एक भोक्ता प्राणी है, भाग के बिना उसका जीवन एक भी क्षण चलायमान नहीं रह सकता है। जबकि उपनिषद् ग्रन्थों में भोग को त्यागने की बात बतलायी गयी है व उसका निस्तारण भी किया गया है। अतएव उपनिषदों में काम्य कर्म के त्याग व आधुनिक युग में उसकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालना महत्वपूर्ण हो जाता है।

उपनिषद् ग्रन्थों में काम्य कर्मों को परित्याग करने की बात बतलायी गयी है। 'कामाय हितानि काम्यानि' इस व्युत्पत्ति के अनुसार उन कर्मों को काम्य कहा जाता है, जो शास्त्रों के अनुसार किसी फल की कामना पूर्ति के लिये किया गया है। कामना की पूर्ति कामना के विषयभूत फल के उत्पादन से होती है, फलतः जो कर्म

शास्त्रानुसार काम्य फल के उत्पादक होते हैं, वे ही काम्य कर्म कहे जाते हैं। जैसे परलोक में स्वर्ग और इस लोक में पुत्र, कलत्र, धन, धान्य आदि मनुष्य को काम्य होते हैं। काम्यनिषिद्ध वर्जनपुरासुरं[3] ..... के अनुसार काम्य कर्म को त्यागने की बात बतलायी गयी हैं ईशावास्योपनिषद् में उस परब्रह्म परमात्मा को अन्तस्तत्व में रखते हुए त्यागपूर्व इस चराचर जगत् का भोग करते रहो, इसमें आसक्त मत होओ क्योंकि भोग्य पदार्थ किसके हैं अर्थात् किसी के भी नहीं[4], आचार्य मनु ने भी अपने ग्रन्थ में बतलाया कि यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईंधन और घी डालने से अग्नि बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी नहीं होना चाहिए।[5] पश्चिम के दार्शनिक बेन्थम ने सुख और दुःख को मापने के सात आयाम बतलाये हैं, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है।

दीर्घ, सान्द्र ध्रुव, शुद्ध फलद, द्रुत
सब सुख दुःख के लक्षण जानों
ऐसे लक्षण वाले सुख को
स्वार्थ साध्य हो तो अपना लो।
लोक–सुख साध्य तुम्हारा यदि हो,
तो इस सुख को विस्तृत कर दो।
निज–पर का यह टल दुःख टालों
और अटल हो तो कम कर दो[6]

ये सात आयाम दीर्घता, सान्द्रता, ध्रुवता, शुद्धता, फलदता, द्रुतगति या वेग और विस्तार हैं। सुख और दुःख में ये सातों आयाम पाये जाते हैं। 'दीर्घता' का तात्पर्य है सुख या दुःख कितने समय तक रहता है। 'सान्द्रता' का तात्पर्य है कि वह कितना गाढ़ा या हल्का है। 'ध्रुवता' का तात्पर्य है उसकी प्राप्ति निश्चित है या अनिश्चित। 'शुद्धता' का तात्पर्य है सुख का दुःख–रहित होना और दुःख का सुख–रहित होना। 'फलदाता' का तात्पर्य है सुख या दुःख या दुःख उत्पन्न करना। 'वेग' का तात्पर्य है कि सुख या दुःख कितने व्यक्तियों को होता है।

इन सातों आयामों के अनुसार अधिक दीर्घकालीन सुख अल्पकालीन सुख से, गाढ़ा सुख हल्के सुख से, ध्रुव सुख अध्रुव सुख से दुःखरहित सुख–दुःख मिश्रित सुख से सुखोत्पादक सुख दुःखोत्पादक सुख से तीव्रगामी सुख मन्दगामी सुख से तथा बहुजन का सुख अल्पजन के सुख से अच्छा हैं इसके विपरीत दीर्घकालीन दुःख अल्पकालीन दुःख से, गाढ़ा दुःख हल्के दुःख अध्रुव दुःख से, सुखरहित दुःख सुख सम्पृक्त दुःख से, दुःखोत्पादक दुःख सुखोत्पादक दुःख से, तीव्रगामी दुःख मन्दगामी दुःख से तथा बहुजन का दुःख अल्पजन के दुःख से बुरा हैं।

बौद्ध दर्शन के अनुसार पहले व्यक्ति अपने व्यक्तिगत दुःख को दूर करे तत्पश्चात् यथाशक्ति अधिक से अधिक लोगों के दुःख को भी दूर करे महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि–

भिक्षुओं! बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ

लोक की अनुकम्पार्थ चारों ओर घूमों।[7]

इस प्रकार वर्तमान युग में जहाँ साधन कम है व उपभोक्ता की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है, उपनिषद् ग्रन्थों का 'काम्य कर्म का त्याग कर भोग करने का उपदेश[8] का महत्व बढ़ जाता है, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम–कर्म करने की प्रेरणा दी है, जिससे अधिक से अधिक संख्या में सुख व्याप्त हो सके व समाज में आतंक, चोरी, डकैती की घटनायें कम हो सके।

सन्दर्भ सूची

1. 2008अर्पीूपदकनेंउंरण्बवउ
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी तिड़न्त प्रकरण, तुदादिगण सूत्र संख्या– 36, पृष्ठ– 634, अष्टम संस्करण
3. वेदान्तसार–सूत्र संख्या–4, चतुर्थ संस्करण–2003।
4. तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

   –ईशावास्योपनिषद् प्रथम मंत्र
5. न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।
   हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

   – विशुद्ध मनुस्मृति–2/94
6. ।द प्दजतवकनबजपवद जव जीम चतपदबपचसमे व िडवतंसे ंदक स्महपेसंजपवद

   .बिंचजमत.4
7. चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय
   लोकानुकम्पाय अत्याम हिताय सुखय देवमनुस्नानं।।

   –विनय–पिटक, महाविग्ग।
8. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतसमाः।
   एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

   –ईशावास्योपनिषद् द्वितीय मंत्र